संत कबीर : आत्मबोध, प्रेम और क्रांति के अमर गायक

मुकेश नायक

भारतीय संत परंपरा में संत कबीर का स्थान अत्यंत विशिष्ट और ऊंचा है. वे केवल एक संत कवि ही नहीं, बल्कि आत्मबोध को प्राप्त एक ऐसे प्रज्ञापुरुष हैं जिन्होंने अपने अनुभवों को सरल, सहज और प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया. उनकी वाणी में अध्यात्म की गहराई, प्रेम की मधुरता और क्रांति की ज्वाला-तीनों का अद्?भुत संगम दिखाई देता है.

कबीर का व्यक्तित्व अलमस्त फक्कड़ का था-वे किसी परंपरा या बंधन में नहीं बंधे. उनकी साखियों, सबद और पद सीधे हृदय को स्पर्श करते हैं और साधक के भीतर एक अद्भुत खुमारी उत्पन्न कर देते हैं. उनकी वाणी आत्मा की उस प्यास को जगाती है, जो मनुष्य को अपने भीतर छिपे परम सत्य की खोज के लिए प्रेरित करती है.

ओशो रजनीश ने भी कबीर को संतों में सर्वोच्च स्थान दिया है. उनके अनुसार, कबीर पूर्णिमा के चाँद के समान हैं- अद्वितीय और अतुलनीय.' यह कथन कबीर की उस विलक्षणता को दर्शाता है, जो उन्हें अन्य संतों से अलग बनाती है. कबीर की वाणी केवल कविता नहीं, बल्कि एक जीवंत अनुभूति है- एक ऐसा संगीत, जो शून्य में भी गूंजता है और जीवन को महोत्सव बना देता है.

कबीर का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने ईश्वर को बाहरी आडंबरों से मुक्त कर दिया. उन्होंने स्पष्ट कहा-

'कस्तूरी कुंडल बसै,
मृग ढूँदै बन माहिं.'

अर्थात् जिस परमात्मा को मनुष्य बाहर खोजता है, वह उसके भीतर ही विद्यमान है. यह विचार न केवल सरल है. बल्कि अत्यंत गहन भी है. इसी प्रकार कबीर का यह संदेश-

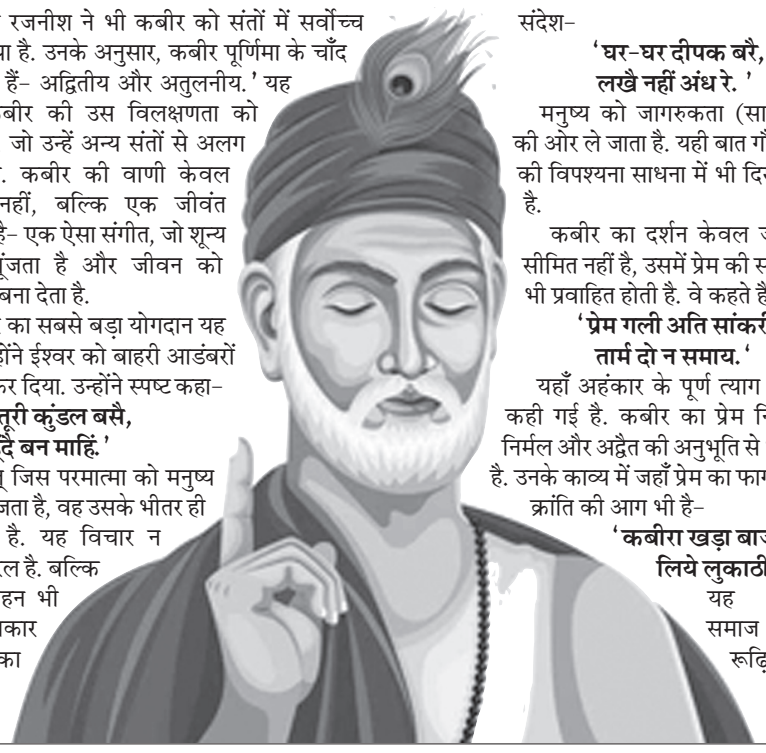

'घर-घर दीपक बरै,
लखै नहीं अंध रे. '

मनुष्य को जागरुकता (साक्षीभाव) की ओर ले जाता है. यही बात गौतम बुद्ध की विपश्यना साधना में भी दिखाई देती है.

कबीर का दर्शन केवल जान तक सीमित नहीं है, उसमें प्रेम की सरस धारा भी प्रवाहित होती है. वे कहते हैं-

'प्रेम गली अति सांकरी,
तार्म दो न समाय.'

यहाँ अहंकार के पूर्ण त्याग की बात कही गई है. कबीर का प्रेम नि:स्वार्थ, निर्मल और अद्वैत की अनुभूति से भरा हुआ है. उनके काव्य में जहाँ प्रेम का फाग है, वहीं क्रांति की आग भी है-

'कबीरा खड़ा बाजार में,
लिये लुकाठी हाथ.'

यह पंक्ति समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों को जलाने का आह्वान है. कबीर केवल उपदेश नहीं देते, वे झकझोर कर जगाते हैं.

कबीर के काव्य में गुरु की महिमा भी अत्यंत महत्वपूर्ण है-

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाय.'

यहाँ गुरु को ईश्वर से भी पहले स्थान दिया गया है, क्योंकि वही ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग दिखाते हैं. यह भाव भारतीय आध्यात्मिक परंपरा की गहराई को दर्शाता है. कबीर का जीवन भी उनकी वाणी की तरह सरल और निष्कलुष था. वे एक जुलाहे थे, लेकिन उनकी साधारण जीवनशैली के भीतर असाधारण आध्यात्मिक संपदा छिपी थी. उन्होंने अपने जीवन को 'झीनी-झीनी चदरिया की तरह निर्मल बनाए रखा.

अंतत:, कबीर जान और भक्ति, निर्गुण और सगुण, शून्य और पूर्ण सभी का अद्वितीय संगम हैं. उनके वचनों में जो सत्य प्रकट होता है, वह केवल पढ़ने या सुनने के लिए नहीं, बल्कि जीने के लिए है.

इस प्रकार, संत कबीर केवल एक कवि या संत नहीं, बल्कि एक जीवंत चेतना हैं- एक ऐसा प्रकाश, जो आज भी साधकों के मार्ग को आलोकित कर रहा है. उनकी वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उनके समय में थी. क्योंकि सत्य कभी पुराना नहीं होता.

(लेखक म.प्र. के पूर्व मंत्री हैं)

क्लास by बड़े भाई

जाको राखे साइयां मार सके ना कोय

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, अभी कुछ ही दिन पहले मेरी, मेरे बड़े भाई सामान व्यक्तित्व से बात हुई उन्होंने किसी बात पर एक महाभारत से जुड़ा बहुत सुन्दर किस्सा सुनाया. उन्होंने बताया कि जब महाभारत युद्ध के लिए जब कुरुक्षेत्र चुन लिया गया तो उसकी तैयारियां शुरू हो गयी. जगह साफ़ की जा रही थी, क्षेत्र के पेड़ पौधे काटे जा रहे थे. वहीँ पर उन्हीं काटे जाने वाले पेड़ों में से एक पेड़ की डाल पर एक चिड़िया, अपने नौनिहाल बच्चों के साथ घोसला बनाकर रह रही थी. वो बेहद डर गयी. डर सही भी था उसका कि अब क्या होगा.. फिर तभी वो पेड़ काट दिया गया. वो चिड़िया, उसके बच्चे और घोंसला सब नीचे गिर गए. वह अपने बच्चों को अपने पंखों की बाहों में समेटकर पूरी आस्था और विश्वास के साथ भगवान् से विनती करने लगी कि हे ईश्वर हमारी , हमारे बच्चों की रक्षा करो और तभी एक घटना और घट गयी. उसने उसी क्षेत्र में उसी कि ओर बढ़ता हाथी दिखा. उसके गले में एक बड़ी घंटी बंधी थी. अब चिड़िया को बचने की कोई सम्भावना नही थी. उस हठी के एक पैर से ही उसके पूरे परिवार के प्राण चले जाने थे, उसके बच्चे उड़ नही सकते थे, उसने उनका साथ नही छोड़ा और बच्चों को समेट आँख मूंदकर भगवान् को जपते वहीँ बैठ गयी. फिर अचानक उसके चारों ओर घनघोर अन्धेरा छा गया. वो कहाँ पहुँच गयी उसको पता ही नही चल रहा था. लगभग 18 दिनों तक इसी अँधेरे में बच्चों के साथ वह चिड़िया उस घनघोर अँधेरे में बैठी रही. अठारहवे दिन अचानक उजाला हुआ और जो उसने देखा वह एक चमत्कार था. दरअसल अठारह दिन पहले उस युद्ध में आते हाथी के गले पर लटकी घंटी उस पर इस तरह गिरी थी कि वह चारों ओर से अपने परिवार के साथ ढक गयी. और इसी घंटी की वजह से अठारह दिनों के युद्ध में वह पूरी तरह सुरक्षित रही. इस घटना से एक बड़े चर्चित कहावत को बल मिला था कि जाको राखे साइयां, मार सके न कोय .

छोटे भाई, कितना बढिया किसा है ना.. यह किस्सा और यह कहावत विश्वास और आस्था के चमत्कार का बेहद सुन्दर प्रमाण है. दृढ विश्वास और दृढ आस्था सदैव फलीभूत होती है. तो जैसी आस्था और विश्वास होगा वैसा ही परिणाम हमें मिलता रहता है. इस चर्चा से आपको क्या लेना है आप समझ गए होंगे. धन्यवाद

पुस्तक चर्चा

हिमालय की घुटती सांसों को बचाने की ज़िद्-ओ-जहद करता 'टनल'

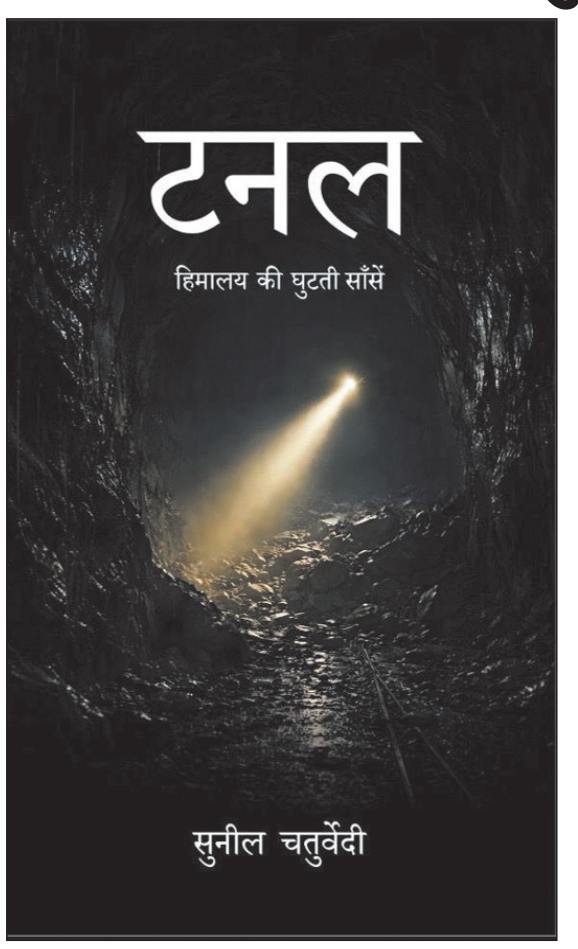

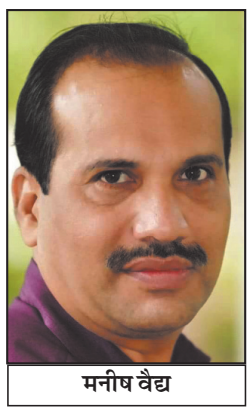

मनीष वैद्य

हमारे देश के मुकुट कहे जाने वाले हिमालय की साँसें घुट रही हैं. वेंटिलेटर पर कराहते हिमालय की दर्द भीगी मद्धिम पुकार हम नहीं सुन पा रहे. नीति-नियमों, पर्यावरणीय रिपोर्ट्स और जानकारों की राय दफ्तरों में धूल खा रही हैं. लेकिन इससे उलट दिन-ब-दिन दरकने की तरफ़ बढ़ते जा रहे हिमालय को हमने अपनी नई जीवनशैली में मौज-मस्ती का नया टूरिस्ट स्पॉट बना लिया, नित नए ख़तरनाक निर्माण हो रहे, परम्परा से आई जीवनशैली और उसमें पहाड़ों से मनुष्य के बर्ताव को हम सब पूरी तरह से भूल गए हैं. पहाड़ निजी हाथों को सौंपे जा रहे हैं. अब प्राथमिकताएँ अर्थ और सुविधाओं के नाम पर पीछे धकेली जा रही है.

इन विपरीत परिस्थितियों में हिमालय की आर्तनाद को हम तक पहुँचाता एक नया उपन्यास 'टनल' आया है, जो कुछ सालों पहले सिल्क्यारा में टनल हादसे की कथा के ज़रिए हिमालय की थकी हुई टेर सुनाता है. वागीश्वरी व रवीन्द्र कालिया सम्मान से सम्मानित उपन्यासकार सुनील चतुर्वेदी उन विषयों को गहराई से छूते हैं, जिन्हें समकालीन लेखक लगभग भूले होते हैं. बीते चारों उपन्यासों में उनके विषय वैविध्य देखे जा सकते हैं. यह उपन्यास इस लिहाज से और मानीखेज हो जाता है कि इसके लेखक भूगर्भ वैज्ञानिक हैं, देशभर में अपने उल्लेखनीय पर्यावरणीय कामों के लिए खासे पहचाने जाते हैं.

यह उपन्यास उस एक टनल हादसे तक सीमित नहीं रहता बल्कि उसके पीछे की पड़ताल करते हुए बीते 75 सालों के उस पूरे संघर्ष और आंदोलनों को भी शिद्दत से याद करता है जिनमें यहाँ के सैकड़ों अनाम बाशिंदों ने अपने हिमालय को बचाने की लड़ाइयों के लिए अपना सब कुछ वार दिया. अपने ही वोट से चुनी हुई सरकारों ने भले ही उनकी आवाज़ें नहीं सुनी हो या नक्कारखाने में गुम हो गई हों पर हिमालय के लोगों ने सब कुछ खोकर भी अपनी बात ज़िंदादिली से सामने रखी.

सहज-सरल ढंग से अपनी बात कहते हुए उपन्यास इस रवानगी में आगे बढ़ता है कि एक बार शुरू करने वाला पाठक इसे पूरा करके ही दम लेता है. ग़ज़ब की क़िस्सागोई के साथ चित्रात्मक भाषा जगह-जगह दृश्य खड़े कर देती है. लोक को भी इसमें सजीव रूप में देखा जा सकता है. हिमालय का लोकपर्व फूलदेई हो या दीवाली पर भेला की परम्परा, इसमें उनके गीत हैं, उछाह है, आख्यान हैं, मान्यताएँ और कथाएँ हैं पर सब उपन्यास के कथानक में गूँथी हुई जैसे आप रजतपट पर कोई फ़िल्म देख रहे हों. प्रतिष्ठित संभावना प्रकाशन ने इसे सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रकाशित किया है. प्रतीकात्मक आवरण के साथ सुंदर, सादगीपूर्ण और साफ़-सुथरी छपाई किताब को पढ़ा ले जाने में मदद करती है. एक बानगी देखिए- 'उस रात चाँद आसमान में पूरा था. पहाड़ चाँद की रोशनी में भीगे खुश जान पड़ रहे थे. पेड़ गुनगुना रहे थे. हवा में संगीत था. खुशी का संगीत... अँधेरी बंद सुरंग सैकड़ों जलते दीयों से रोशन थी. कुछ मज़दूर चीड़ के पेड़ों की छाल ले आए थे. उसकी मशाल बनाई गई और लोग मशाल हाथ में पकड़े, ऊपर-नीचे घुमाते खुशी से किलकारियाँ भरते गोल घेरे में नाच रहे थे. मैं भी नाच रहा था.'

इसे कहने के लिए वे एक परम्परागत लेकिन उसमें भी नवाचार करते हुए अनूठा शिल्प अपनाते हैं. कहानी का नैरेटर आख़िर तक आते-आते ख़ुद नायक लगने लगता है. सुनील जी की ख़ासियत है कि वे अपने हर उपन्यास में कथानक के साथ शिल्प और भाषा दोनों बदल लेते हैं. यह काम बिरले लेखक ही कर पाते हैं.

'टनल' प्रकारांतर से हमारे हालिया समाज और समय की ऐसी अँधेरी सुरंग में बदल जाता है, जिसमें हम सब अपनी साँसें घुटने देने के लिए अभिशप्त हैं. यह सुरंग हमारे भीतर पैठते जा रहे स्वार्थवृत्ति की हो या अपने परिवेश से कटकर रह जाने की, किताब में एक और सुरंग है, सत्ता और व्यवस्था की, जिसके पास इन ज़रूरी मुद्दों पर शिद्दत से सोचने तक की फ़ुर्सत नहीं है. वे इसे बड़े फौरी तौर पर लेकर आसन्न संकट से तो बाहर आ जाते हैं लेकिन उनके पास आगे का कोई रोड मेप नहीं है. दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि अपनी बनाई इन सुरंगों में वही समाज फँसा है जो कल तक इन पहाड़ों को देवभूमि कहते हुए इनकी पूजा करता था. इनमें घूमने को तीर्थ मानता था पर आज तीर्थ जैसा कुछ नहीं बचा. पुरखों के तीर्थ अचानक हमारे लिए अब पर्यटन व्यवसाय बन गए हैं.

'टनल' अपने समय के बिगड़ते परिवेश की चिंता से उपजा है और इसे पढ़ते हुए पाठक अंत तक इस चिंता में शामिल हो जाता है.

टनल (उपन्यास)
सुनील चतुर्वेदी
मूल्य-225 रुपए
संभावना प्रकाशन, हापुड़

कहानी

राजनीति की समझ

कमलेश व्यास 'कमल'

अगर किसी से पूछा जाए की राजनीति क्या है? तो वह राजनीति विज्ञान में पढ़ी हुई कोई ना कोई परिभाषा सुना कर बता देगा कि राजनीति क्या है. परंतु बटेर बाबू का काम ऐसा नहीं है. उनसे अगर कोई बात पूछी जाए तो वे प्रैक्टिकली समझाना अधिक पसंद करते हैं. वैसे उनका तकिया कलाम है- सब राजनीति है भिया! प्रत्येक घटना-दुर्घटना पर लंबी-चौड़ी बहस करने के बाद आप कितना भी नतीजा निकाल लें,बटेर बाबू आखिर में 'सब राजनीति है भिया!' कह कर अपना ठप्पा लगा ही देंगे!!

बटेर बाबू का असली नाम क्या है,यह तो उनका आधार कार्ड जाने या राशन कार्ड! शहर के लोग तो उन्हें बटेर बाबू के नाम से ही जानते हैं.किसी के यहां शुभ-अशुभ कोई भी कार्य हो,बटेर बाबू अगर उसे किसी भी एंगल से जानते हैं तो बगैर बुलाए हाजिर हो जाएंगे और सिर्फ हाजिर ही नहीं,पूरे मनोयोग से कार्य में हाथ भी बटाएंगे, आप कहें या ना कहें वे काम में ऐसे जुट जाएंगे जैसे सारी जवाबदारी आपने उन्हें ही सौंप रखी हो! इसीलिए शहर के लोग उन्हें उस वक्त बड़ी शिद्दत से याद करते हैं जब वे किसी कार्यक्रम में दिखाई ना दें.

शहर में कोई भी सार्वजनिक कार्यक्रम हो बटेर बाबू उस कार्यक्रम में ना हों ऐसा हो नहीं सकता उनकी वेशभूषा, एक अदद् कुर्ता पाजामा,गले में गमछा और पैरों में चप्पल. ठंड का मौसम हो तो जैकेट और शाल भी जोड़ लें. आर्थिक रूप से ठीक-ठाक बाप दादा की छोड़ी हुई दौलत और 20-25 किराएदारों वाली बड़ी सी चाल से आने वाला किराया भरण पोषण के लिए पर्याप्त है. शादी उन्होंने की नहीं, घर में तीन भाई और उनके बच्चे हैं. बटेर बाबू कब सोते हैं कब जागते हैं यह एक पहेली से कम नहीं, देर रात तक चलने वाले कवि सम्मेलन में भी वे दिखाई देंगे और अगली सुबह तरोताजा किसी प्रभात फेरी में भी उन्हें देखा जा सकता है! हंसमुख सदाबहार हर विषय में पारंगत बटेर बाबू जैसी शख्सियत दुर्लभ है! शहर के बड़े से बड़े रईस के बंगले से लेकर झोपड़पट्टी तक एक समान पकड़ रखने वाले अजूबा हैं वे!

प्रवचन के पंडाल में भी वे दिखाई देंगे तो देर रात किसी बार में मदिरापान करते हुए भी!! किसी दंगे किसी पंगे से वैसे तो वे दूर ही रहते हैं लेकिन किसी भी विषय पर बहस के दौरान उनका तकिया कलाम 'सब राजनीति है भिया!' इसका कोई जवाब नहीं बटेर बाबू के पास एक,दो पहिया वाहन भी है जिसे उन्हें चलाते किसी ने नहीं देखा,जब भी देखा ,उस वाहन पर पीछे बैठे ही देखा है.गाड़ी हमेशा उनके एक किराएदार का लड़का जिसे वे 'बारीक' कह के पुकारते हैं चलाता है.देखा जाए तो अधिकांश जगहों पर वे और बारीक साथ साथ ही दिखाई देते हैं. एक दिन किसी बहस के दौरान जैसे ही बटेर बाबू ने अपना तकिया कलाम 'सब राजनीति है भिया!' दोहराया तो बारिक पूछ बैठा 'भैया यह राजनीति क्या है?' सिर्फ पूछा होता तो कोई बात नहीं होती,पर... बारीक पता नहीं किस तरंग में था वह तो पीछे ही पड़ गया- 'बताओ ना भिया! ये राजनीति क्या है?'

बटेर बाबू ठहरे प्रैक्टिकल इंसान,उन्होंने भी तैश में आकर कह दिया 'कल तुझे बताऊंगा कि राजनीति क्या है' इसके फौरन बाद पत्रकार वार्ता बुलाकर बटेर बाबू ने शहर के मध्य से कलाली हटाओ के मुद्दे पर एक दिन के अनशन की घोषणा कर दी.अगले दिन दोपहर तक कलाली के सामने बकायदा तंबू तान कर बटेर बाबू और बारीक एक दिन के अनशन पर बैठ गए. बटेर बाबू की लोकप्रियता कोई कम न थी, पाँच- पचास फूल मालाएँ उनके गले में प्रशंसकों ने पहना दी और जोरदार तकरीरे भी हो गई, शाम ढलते-ढलते कुछ ही फुरसतिये,बटेर बाबू और बारीक तंबू में बचे थे. उतरते नवंबर का महीना था रात के ग्यारह बजते बजते फुरसतिये भी धीरे-धीरे खिसकने लगे थे. बारह बजते-बजते तंबू में बस बटेर बाबू और बारीक रह गये थे. रजाई इत्यादि का इंतजाम पहले से किया हुआ था,बटेर बाबू ने बारीक से कहा- 'टेंट की लाइट बंद कर दे और आगे से कनात लगा दे.' बारीक भी भूख से निढाल थक चुका था. उसने फौरन हुक्म की तामील की और रजाई ओढ़ कर सोने की कोशिश करने लगा. पर पेट में तो चूहे गुलामडण्डा खेल रहे थे! नींद कहां से आती, बटेर बाबू ने धीरे से कहा 'क्यों रे बारीक भूख लग रही है?'बारीक बोला 'हां भैया' बटेर बाबू बोले 'जा मेरी गाड़ी की डिक्की में से झोला ले आ.' बारीक बोला.. ' झोला?' ... 'हाँ झोला,...जितना कहता हूं उतना कर '...बटेर बाबू थोड़ा तैश में आकर बोले.

गाड़ी टेंट के ही एक कोने में रखी थी,बारीक गया और झोला लेकर आ गया झोले में पैक किए हुए आलू के पराठे रखे थे और और एक अदद् अंग्रेजी शराब का पाव रखा था. बटेर बाबू ने अधलेटी अवस्था में रजाई औढ़े हुए ही पाव का ढक्कन खोला और गट-गट तीन-चार घूँठ हलक के नीचे उतार कर पाव बारीक की ओर बढ़ा दिया. बारीक ने भी आव देखा न ताव फटाफट तीन-चार घूँठ पी लिये. फिर बटेर बाबू ने आलू के पराठों से आवरण हठाया और बारीक को खाने का इशारा कर अधलेटी अवस्था में ही खाने लगे. बारीक भी चुपचाप पराठे चबाने में जुट गया. पराठे खाने के दौरान दोनो ने बारी-बारी से बचा हुआ पाव भी उदरस्थ कर दिया था. बटेर बाबू ने झोला और खाली पाव वापस गाड़ी की डिक्की में रखने का इशारा किया. बारीक चुपचाप उठा और यह काम कर आया. नशे का सुरूर दोनो पर हावी हो चुका था,अपनी-अपनी रजाई दोनो गर्दन तक तानकर एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराये, लगभग डेढ़ बजने को थी बटेर बाबू बोले- 'क्यो रे अब समझ में आया कि राजनीति किसे कहते हैं या और समझाऊँ? बारीक खिलखिलाकर हँसने लगा और बोला- 'अरे नहीं भिया! ...अब तो अच्छी तरह से समझ में आ गया कि राजनीति किसे कहते हैं!! दोनो जोर-जोर से हँसने लगे और हँसते-हँसते करवट बदलकर सो गये.

कविता

अरावली का सिकुड़ता आंचल

रतन कानावत

आसमान में उठते
धुएँ के छल्लेदार बादल
आंखों की नमी को
सोखती उमस
शुष्क मुस्कान ओढ़े मासूम चेहरे
धड़कनों को बढ़ाता हूटर

तभी
आंखों के आगे लहराने लगता है
अरावली का आंचल
जिसकी ओट में
यहाँ तक आई मैं
सहसा
सिमटता, सिकुड़ता महसूस होता है

और
होने लगती हैं
एक अजीब-सी
बेचैनी, बेबसी और छटपटाहट
जैसे ही
रुकती है मेरी कार
एक सीमेंट फैक्ट्री के दरवाज़े पर .

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी